उपनिवेशन का नैरन्तर्य और मय्यादास की माड़ी

डॉ. प्रणीता पी.

महाराजास कॉलेज, एरणाकुलम

यूरोप तथा अमेरिका द्वारा गैर-पश्चिमी संस्कृतियों और राष्ट्रों पर कब्ज़ा करके वहाँ के प्रशासन, पर्यावरण, भाषा, धर्म एवं जीवन-शैली पर अपने विचारों को थोपने की दीर्घकालीन प्रक्रिया ही उपनिवेशन है। भारत लम्बे सालों से उपनिवेश का शिकार है। उन्नीस सौ सैंतालीस तक भारत क्रमश: पुर्तगाल, डच, फ्रांस और ब्रिटेन का उपनिवेश बना रहा। देश की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश में उपनिवेशी शासन का प्रभाव गहराई तक पड़ा, जिससे भारतीय अभी तक मुक्त नहीं है। स्वतन्त्रता के इतने सालों बाद भी उपनिवेशन की प्रक्रिया का वर्चस्व समाप्त नहीं दिखाई देता है। वर्तमान समाज में भी इसकी निरन्तरता है। वर्तमान उपनिवेशन, नव-उपनिवेशन के नाम से जाने जाते हैं। यह सीमातीत दुनिया के निर्माण के लिए अन्य देशों के सांस्कृतिक वैविध्य को तोड़कर यूरोपीय संस्कृति को विश्व संस्कृति के रूप में स्थापित करने का प्रयास है। यह मात्र भारत के लिए नहीं, सभी उपनिवेशी देशों के लिए लागू है।

यूरोपीय उपनिवेशों के चंगुल से मुक्त हुए देशों को अपनी अस्मिता और सामाजिक और सांस्कृतिक स्वरूप को पाने की लालसा है। ऐसे में उत्तर-उपनिवेशवाद का उदय हुआ। समीक्षक

प्रोफेसर अमरनाथ के अनुसार– ''उत्तर-उपनिवेशवाद कोई एक अनुशासन नहीं है, इसके भीतर अल्पसंख्यक विमर्श, लैटिन अमेरिकी अध्ययन, अफ्रीकी अध्ययन तथा तीसरी दुनिया से सम्बन्धित समस्याओं को एक साथ समेटकर देखा जा सकता है। इन्हें लम्बे समय तक सांस्कृतिक पहचान नहीं मिली, जबकि वर्चस्ववादी पश्चिमी संस्कृतियों को राजनीतिक कारणों से विशेषाधिकार प्राप्त था और आज भी है।''[1] अल्बर्ट मेम्मी का ग्रन्थ 'द कोलोनाइज़र एंड द कोलोनाईज्ड' में इसका विस्तृत विवरण दिया गया है। इस बहस को आगे बढ़ाने में एडवर्ड सईद की पुस्तक ओरिएंटलिज्म का नाम प्रमुखता से लिया जाता है।

भीष्म साहनी जी के उपन्यासों का विश्लेषण करने पर पता चल जाता है कि 'मय्यादास की माड़ी', 'तमस' और 'बसन्ती' के माध्यम से भारतीय उपनिवेश की स्थापना से लेकर स्वतन्त्र भारत के उदय तक की सम्पूर्ण इतिहास कथा का औपन्यासिक चित्रण किया है। अर्थात इसका सम्बन्ध हमारे औपनिवेशिक नैरन्तर्य से है। 'मय्यादास की माड़ी' एक पूर्व औपनिवेशिक हिन्दुस्तानी कस्बे के एक औपनिवेशिक शहर में धीरे-धीरे बदलने की विडम्बनापूर्ण कहानी है, तो 'तमस' में एक औपनिवेशिक शहर के विघटन की प्रक्रिया पूरी होती है। 'बसन्ती' ऐसे किसी विघटित हो चुके शहर के मलबे पर स्वतन्त्र भारत में, एक नये शहर की बसावट की कहानी है।

प्रकाशन वर्ष की दृष्टि से देखें तो 'मय्यादास की माड़ी', 'तमस' एवं 'बसन्ती' के बाद प्रकाशित उपन्यास है। प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम से पंजाब के अतीत की एक माड़ी अथवा हवेली एवं उसके आस-पास के कस्बे के जीवन को हमारे सामने रख देता है। यह प्रकारान्तर से उपनिवेश के पहले की, उपनिवेश की एवं उत्तर-उपनिवेशी भारत की कहानी है। माड़ी की नींव दीवान मथरादास ने रखी थी, एक महामारी में उनकी मृत्यु हो जाती है। मय्यादास के बाद उसका बेटा मय्यादास माड़ी का मालिक बना। मय्यादास के छोटा भाई का नाम गोकुलदास था, वे काबुल दरबार में कारदार नियुक्त कर दिया गया। गोकुलदास ने एक रखैल को रख दिया था, उस रखैल से एक पुत्र हुआ, जिसका नाम धनपत था। धनपत का दीवान मय्यादास ने काफी अपमान किया। उसने दीवान मय्यादास से अपना हिस्सा माँगा। लेकिन मय्यादास ने उसे कुछ भी नहीं दिया और उसका सामान बाहर फिंकवा दिया। धनपत गम्भीरता से बोला– ''कोई फिक्र नहीं तावूजी, फेंक दो सामान, पर मैं भी दीवान हूँ, और अपना हक लेकर ही रहूँगा।''[2] धनपत अंग्रेज़ों से जा मिला। वह कस्बे का पहला आदमी था, जो साहिब बहादुर के पास कुछ माँगने गया था। साहिब बहादुर ने उसे तीन गाँवों की जागीरदारी की सनद सौंपी। धनपत ने माड़ी पर कब्जा किया और मय्यादास का सामान बाहर फिंकवा दिया। अब वह दीवान धनपत बन चुका था।

पंजाब का इतिहास साक्षी है कि महाराजा रणजीत सिंह ने पंजाब को सिख

साम्राज्य में बदल दिया। किन्तु उनके देहान्त के बाद अन्दरूनी साजिशों और अंग्रेज़ों के चालों के कारण पूरा साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। महाराज रणजीत सिंह ने न केवल पंजाब को एक सशक्त सूबे के रूप में एकजुट रखा, बल्कि अपने जीते-जी अंग्रेज़ों को अपने साम्राज्य के पास भी नहीं फटकने दिया। उनके मौत के बाद अंग्रेज़ों ने पंजाब पर शिकंजा कसना शुरू कर दिया। अंग्रेज़ों और सिखों के बीच दो युद्धों के बाद 1849 में पंजाब ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन हो गया। उपन्यास में लेखराज ने अपनी दादी से खालसा के आदर्शीकृत इतिहास को अपनी मूलचेतना या धर्म के समान पाया है। वह खालसा साम्राज्य और उसके नेतृत्व से अपने मोहभंग के बाद अंग्रेज़ी साम्राज्य के विरोध में लड़ रहे कूकों में शामिल हो जाता है। वह बरसों अर्ध वैराग्य या अन्यमनस्कता की स्थिति में भटकते रहने के बाद अपने कस्बे में लौटता है और मित्रों के आग्रह करने पर कूकों की औपनिवेशिकता विरोधी चेतना और कार्य-शैली का खुलासा इन शब्दों में करता है– ''कूके कहते थे, फिरंगी को देश से निकालो, फिरंगी का डटकर मुकाबला करो। फिरंगी की अदालतों, कचहरियों में मत जाओ। विदेशी चीज को हाथ भी मत लगाओ। विदेशी कपड़ा मत पहनो।''[3] लेखराज का यह विमर्श रामजवाया में केवल व्यंग्य भाव ही पैदा करता है। वह कहता है– ''कूके कूक-कूककर चले गये। फिरंगियों के सामने किसी की दाल नहीं गलती।'' उपन्यास में इस बहस की परिणति आगे चलकर भीष्म साहनी की इस टिप्पणी में होती है– ''कस्बे के लोग इतिहास की अनिवार्यता में यकीन रखने वाले लोग थे। जो हुआ ऐसे ही होना था। ऐसा ही विधि का विधान था। मनुष्य का कर्तव्य इसे स्वीकार करना और विधि के विधान के साथ खुद को ढालना है।'' रामजवाया आगे कहता है– ''गुरु तेगबहादुर महाराज ने भविष्यवाणी की थी या नहीं कि समुद्र पार से टोपीवाला सिख मेरी मौत का बदला लेने आयेगा। की थी या नहीं? फिरंगी वही टोपीवाला सिख है।''[4]

उपन्यास के पहले खंड में सिख अमलदारी के समय को चित्रित किया है। लेखक के ही शब्दों में– ''उस समय कस्बे के जीवन की इस स्थिरता के पीछे बहुत हद तक वे मूल्य और आदर्श भी थे, जिन पर सिख अमलदारी की स्थापना हुई थी। इस स्थिरता का एक दूसरा पहलू भी था। वह यह है कि उस समय जनजीवन राजनीतिक चेतना से अनजान था। जो भी नृप होय, उसी की भक्ति और प्रशस्ति करने की बद्धमूल प्रवृत्ति थी। इस प्रवृत्ति की जड़ें पारिवारिक ढाँचे में थी, वर्णाश्रम और जात-पाँत की धार्मिक व्यवस्था में थी। जो भी बड़ा है वह पूज्य है। बड़े का छोटे के जीवन और उसकी आत्मा पर सम्पूर्ण अधिकार है। ब्राह्मणों, गुरुजनों, पितामहों के अनाचार भी आशीर्वाद की तरह शिरोधार्य करने योग्य माने जाते थे। इससे अन्ततः सत्य और असत्य, न्याय और अन्याय को जाँचने के कोई वस्तुनिष्ठ प्रतिमान नहीं

रह जाते। सत्य और न्याय वही है, जिसे कोई समर्थ अपनी शक्ति और अधिकार से मनवा ले।''[5] इससे पता चल जाता है कि कैसे इतनी आसानी से मध्ययुगीन भारतीय समाज औपनिवेशिक समाज में रूपान्तरित हो सका। कस्बे के जीवन में घुल-मिल गये अन्धविश्वास, रूढ़ियाँ, लोभ, ईर्ष्या आदि को उपन्यासकार ने पूरी सच्चाई के साथ चित्रित किया है। पंजाब में सिख राज्य को पराभूत करने में अंग्रेज़ों को स्वयं सिख सेना के उच्चतम सेनापतियों की मदद मिली थी। विश्वासघात के बदले उन्हें नये अंग्रेज़ी निजाम में ऊँचे-ऊँचे ओहदे दिये गये। जबकि लाखों बहादुर सिख सैनिकों को लड़ते-लड़ते मर जाना पड़ा।

उपन्यास के दूसरे खंड में औपनिवेशिक शोषण के भयानक चेहरे को बेनकाब किया गया है। बड़े-बड़े बदलाव अंग्रेज़ों की अमलदारी में हुए। पहले सारे गाँव की जमीन एक होती थी। फसल के हिसाब से लगान तय होता था। जिसे सारा गाँव मिलकर चुकाता था। अब जमीन बाँट दी गई और हर एक कश्तहार का लगान अलग-अलग तय किया गया। फसल अच्छी हो या बुरी, उसे हर हाल में चुकाना था। वह भी नकद। जमींदारों, महाराजों, साहूकारों और अफसरों की पूरी लुटेरी जमात खड़ी हुई। उनकी मदद के लिए कानून अदालत और प्रशासन का एक व्यवस्थित और मजबूत ढाँचा खड़ा किया गया। रेलगाड़ियाँ चलायी गयीं। नये ढंग के बाजार फैलाये गये। चाय, सिगरेट और दीगर नशों का बाजार बढ़ाया गया। दमन और अत्याचार की पूरी संस्कृति खड़ी कर दी गयी। नकदी के व्यापक चलन ने किसानों के जीवन को किस कदर बदहाल और असुरक्षित कर दिया, बाजार की नयी संस्कृति ने किस तरह अपने पाँव पसारे, नये अफसरशाही किस तरह लोगों की जिन्दगी और उनकी चेतना पर काबिज हुई। कुल मिलाकर यह कि एक शान्त स्थिर मध्ययुगीन कस्बा किस तरह छल-कपट उत्पीड़न और अनैतिक होड़ से भरे एक औपनिवेशिक शहर में तब्दील होता है, इसका मर्मस्पर्शी चित्रण उपन्यासकार ने चित्रित किया है। भीष्म जी के ही शब्दों में– ''कस्बे की गालियाँ लाँघते हुए लेखराज सोच रहा था एक अमलदारी वह होती है, जिससे मनुष्य की अच्छी भावनाओं को बल मिलता है, प्रोत्साहन मिलता है, दर्दमन्दी को, सेवाभाव को, दिल की उदारता को, सहनशीलता को, एक-दूसरे के दर्द बाँटने की भावना को। एक अन्य प्रकार की अमलदारी होती है, जिसमें नोच-खसोट, घृणा-द्वेष, धनलोलुपता को बढ़ावा मिलता है।''[6] कस्बे में पहली बार रेल के आगमन पर जनता अपने स्वास्थ एवं जीवन को लेकर आशंकाएँ प्रकट करती है। लेकिन सबसे बड़ा संकट यह था कि रेल के चलने से उसमें सबके एक साथ बैठने से लोगों की जाति कैसे बचेगी, धर्म कैसे बचेगा?

उपन्यास के तीसरे खंड में आर्यपुत्री पाठशाला खोलने के लिए कस्बे में सक्रिय हो गये वाणप्रस्थी जी की भूमिका को उभारा गया है। अपने इन प्रयत्नों में समाज

की पतनशील सामन्तीय संरचना से टकराते हुए जब घायल हो जाते हैं, तो लेखराज और रतनचन्द उनका साथ देते हैं। उपन्यास में रुक्मिणी एक सशक्त नारी पात्र है। वह हरनारायण की विधवा बेटी वीरां की बेटी है। दीवान धनपत का बेटा कल्ले, जो मिर्गी का रोगी था, उसका पति है। रुक्मिणी के वाणप्रस्थी जी की पाठशाला में, माड़ी से पैदल जाते देखकर भागसुद्धि मौसी कहती हैं– ''इस अँधेरे कस्बे में एक दिया जल गया है, उसकी लौ सारे कस्बे को रोशन करेगी। रुक्मिणी के साहस पर चकित होकर सोचती है कि अब पहले वाली बात नहीं रह गयी है कि कहीं कुछ है, जो जाग उठा है, जो करवट लेने लगा है।'[7] रुक्मिणी कल्ले जैसे अपाहिज में साहस और राग का संचार करती है, वह स्कूल में उसके साथ चलती है। उसे अस्पताल में भर्ती कराकर वह तीर्थयात्रा पर जाती है। वहाँ पर भावावेग में वह आत्महत्या कर लेती है।

उपन्यास पंजाब में अंग्रेज़ों के आगमन से लेकर तीन पीढ़ियों के सामाजिक, सांस्कृतिक चेतना के क्रमिक विकास पर प्रकाश डालता है। मय्यादास खालसा राज के प्रति समर्पित हैं, सामन्तीय मूल्यों का प्रतिनिधि है। दीवान कस्बे वालों के गौरव का प्रतीक था। उसने युद्ध में सिख दरबार की मदद की और निजाम बदल जाने के बाद भी अंग्रेज़ी सरकार के नुमाइन्दों के हुजूर में पेश होने से इनकार करता रहा। दीवान मय्यादास के बारे में कहा गया है– ''जमाना बदल गया, कस्बे के गलियों में चलते हुए वह अब छाया से प्रतीत होते थे। वह न तो वर्तमान के साथ जुड़ते नजर आते थे, न भविष्य के साथ। उन्हें देखकर ऐसा लगता था, जैसे कोई व्यक्ति किसी प्रवाह में से छिटककर बाहर फेंक दिया हो।'[8] लेकिन अपने तकरीबन सौ साल लम्बी उम्र के अन्त में उसने पाया कि उसके आस-पास के तमाम रईस अंग्रेज़ों की चाटुकारिता कर न केवल ताकत बटोर रहे हैं, बल्कि खुद उसे बेदखल करने की साजिशें रच रहे हैं। आखिरकार सौ बरस के उम्र में मय्यादास रेलगाड़ी के अंग्रेज़ गार्ड के आगे फर्शी सलाम बजाता है। धनपत उसके बाद की पीढ़ी का प्रतिनिधि है। वह अंग्रेज़ी राज के प्रति वफ़ादार है। अंग्रेज़ों के प्रति उसका निष्ठा ही उसकी सबसे बड़ी योग्यता है। धनपत का छोटा बेटा हुकूमत राय तीसरी पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करता है। वह पाश्चात्य पूँजीवादी सभ्यता के रंग में रँगा हुआ है। लेखराज, अंग्रेज़ी साम्राज्य के विरुद्ध लड़ने वाले हैं। इस प्रकार भीष्म साहनी ने उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य से बीसवीं शती के पूर्वार्ध तक का इतिहास माड़ी को केन्द्र बनाकर चित्रित किया है। माड़ी को भीष्म साहनी ने जिस प्रकार प्रस्तुत किया है, यह इसका मिसाल है। ''माड़ी करीब सौ साल पुरानी तो रही होगी। उसका ऊँचा फाटक, फाटक के ऊपर बना छोटा-सा छज्जा और सबसे ऊपरवाली मंजिल पर बनी छतरी–ये सब सिख अमलदारी या उससे भी पहले की मुगल अमलदारी की देन है। कुछ एक

दरवाजों पर अभी भी मध्ययुगीन नक़्क़ाशी देखने को मिलती है, जबकि अधिकांश मध्ययुगीन दरवाज़ों की जगह, अंग्रेज़ी चलन के सपाट और सीधे दरवाज़े लगा दिये गये हैं।''[9]

गोविन्दराम, मंसाराम, रामजवाया, धनपत और हिम्मतराई ब्रिटिश अमलदारी में कारोबार करके फायदा उठाने वाले लोग हैं। उपन्यास में हरनारायण की विधवा बेटी वीरां, मलिक मुसाराम की पत्नी ईशरा देई, उनकी बेटी पुष्पा, वानप्रस्थी की बेटी सुमित्रा, मय्यादास की पत्नी देवकी, गोकुलदास की रखैल चँदा आदि प्रमुख नारी पात्र हैं। इनके अलावा, विधवा भागसुद्धि और उनकी पोती रुक्मिणी विद्रोही नारियों के रूप में उपन्यास में प्रस्तुत हैं। विस्तृत कथानक और पात्रों की भरमार उपन्यास की विशेषता है। डॉ. भारत कुचेकर ने अपनी पुस्तक 'भीष्म साहनी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व' में प्रस्तुत उपन्यास को एक वाक्य में यों प्रस्तुत किया है– ''कस्बे के जीवन में धुन की तरह लगे अन्धविश्वास, रूढ़ियाँ, लोभ, ईर्ष्या, बदहाली को नियति मानकर चलने वाले लोग, मान-मर्यादा के झूठे नकाब और उनको तोड़ते हुए अनैतिक सम्बन्ध, हम और सत्ता के लिए अपनाये जाने वाले हथकंडे और भौंड़े षड्यन्त्र, अपनों से विरोध और देशी शासकों से साँठ-गाँठ, सत्ता और अधिकार का दुरुपयोग और आक्रोश पी जाने की बेबसी, क्रान्ति और वीरता का लुंजपुंज अवशेष और ढहती हुई पूरी संस्कृति का चित्र है–मय्यादास का माड़ी।''[10] उपन्यास के अन्त में फिरंगियों के विरुद्ध जुलूस निकालने वालों की आवाज कस्बे की पुरानी दीवारों के साथ टकरा-टकराकर गूँज उठती है– ''असां ते साइयां, साड़ा करम कमा दे, साडा गुलामी कोलों देश छुड़ा दे।''[11]

उपन्यास के माध्यम से पंजाब की देशी संस्कृति को पूरी सच्चाई के साथ चित्रित किया है। पंजाब के लोक-जीवन के धड़कन को, ऐतिहासिक तथ्यों को, लोक गीतों के माध्यम से चित्रित किया है। उपन्यास में चित्रित कस्बे के जीवन में वे मूल्य और आदर्श भी है, जिन पर सिख अमलदारी की स्थापना हुई थी। ब्रिटिश अमलदारी के फैलने और देशी अमलदारियों के सिमटते-सिमटते समाप्त होने की सच्चाई को ही उपन्यास पर्दाफाश करता है। एक प्रदेश के सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियाँ, वैयक्तिक, पारिवारिक एवं सामाजिक स्तरों पर किस प्रकार बदल जाता है, इसको कई संकेतों के माध्यम से उपन्यास में चित्रित किया है। दूसरे शब्दों में बताये तो औपनिवेशीकरण के आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक आशयों को कस्बे के बदलते हुए जीवन सन्दर्भों की शक्ल में उपन्यासकार ने प्रस्तुत किया है। यहीं पर यह उपन्यास पंजाब और उसके इतिहास के माध्यम से भारत एवं उसके समान सभी उपनिवेशी देशों के इतिहास का ही चित्रण हो जाता है।

सन्दर्भ

1. डॉ. अमरनाथ, हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, राजकमल प्रकाशन, पृ. 80
2. भीष्म साहनी, मय्यादास की माड़ी, राजकमल प्रकाशन, पृ. 42
3. भीष्म साहनी, मय्यादास की माड़ी, राजकमल प्रकाशन, पृ. 203
4. भीष्म साहनी, मय्यादास की माड़ी, राजकमल प्रकाशन, पृ. 16
5. भीष्म साहनी, मय्यादास की माड़ी, राजकमल प्रकाशन, पृ. 18
6. भीष्म साहनी, मय्यादास की माड़ी, राजकमल प्रकाशन, पृ. 211
7. भीष्म साहनी, मय्यादास की माड़ी, राजकमल प्रकाशन, पृ. 252
8. भीष्म साहनी, मय्यादास की माड़ी, राजकमल प्रकाशन, पृ. 109
9. भीष्म साहनी, मय्यादास की माड़ी, राजकमल प्रकाशन, पृ. 99
10. डॉ. भारत कुचेकर, भीष्म साहनी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ. 55